श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास ९

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

शांति - स्तव (लघुशांति)

मूल -

(विजया-जया-नवरत्न-माला)

भवतु नमस्ते भगवति ! विजये ! सुजये ! परापरैरजिते ! ।
अपराजिते ! जगत्यां, जयतीति जयावहे ! भवति ! ।।७।।

-: शब्दार्थ :-

भवत - हो

नमः - नमस्कार

सुजये ! - हे सुजया

परापरैः - परापर और दूसरे रहस्योद्धार

ते - तुम्हें
भगवति! - हे भगवती
विजये ! - हे विजया
जयति - जय पाते हैं
इति - इसलिये
अजिते ! - हे अजित
अपराजिते - हे अपाराजिता
जगत्यां - लोक में, जंबुद्वीप में
जयावहे ! - हे जयावहा ।
भवति ! - हे भवती !

अर्थ-संकलना : हे भगवती ! हे विजया ! हे सुजया ! हे अजिता ! हे अपराजिता ! हे जयावहा ! हे भवति ! तुम्हारी शक्ति परापर रहस्यद्वारा जगत में जय पाती है, इसलिये तुम्हें नमस्कार हो.....७

मूल -

सर्वस्यापि च सङ्घस्य, भद्र-कल्याण-मङ्गल-प्रददे ! ।
साधूनां च सदा शिव-सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे ! जीयाः ।।८।।

-: शब्दार्थ :-

सर्वस्य - सर्व को
अपि च - तथा
सङ्घस्य - संघ को
भद्र-कल्याण - भद्र कल्याण और
मंगल - प्रददे - मंगल देनेवाली
साधुनां - साधुओ को
च - उसी प्रकार
सदा - निरंतर
शिव-सुतुष्टि-पुष्टि प्रदे - निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली
जीयाः - तुम जय पाओ

अर्थ-संकलना :- सकल संघ को भद्र, कल्याण और मंगल देनेवाली, उसी प्रकार श्रमण संघ को सदा निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली हे देवी ! तुम जय पाओ.....८

मूल -

भव्यानां कृतसिद्धे !, निर्वृति-निर्वाण-जननि ! सत्त्वानाम् ! ।
अभय-प्रदान-निरते ! नमोऽस्तु स्वस्तिप्रदे ! तुभ्यम् ।।९।।

-: शब्दार्थ :-

भव्यानां - भव्य उपासको को
कृतसिद्धे - हे कृतसिद्धा, हे सिद्धी दायिनी
निर्वृति-निर्वाण-जननि- शांति और परम प्रमोद को देने में कारण भूत
सत्वानाम् - सत्वशाली उपासको को
अभय-प्रदान-निरते ! - अभय का दान करने में तत्पर
नमःअस्तु - नमस्कार हो
स्वस्तिप्रदे - क्षेम देने वाली
तुभ्यं - तुम्हें

अर्थ-संकलना - भव्य उपासको को सिद्धि, शांति तथा परम प्रमोद देनेवाली तथा सत्वशाली उपासको को निर्भयता और क्षेम देनेवाली हे देवी ! तुम्हे नमस्कार हो....

मूल -

भक्तानां जन्तूनां, शुभावहे ! नित्यमुद्यते ! देवि ! ।
सम्यग्दृष्टिनं, धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय ।।१०।।
जिनशासन-निरतानां, शान्ति-नतानां च जगति जनतानाम् ।
श्री-सम्पत् - किर्ति-यशो-वर्धनि ! जय देवि ! विजयस्व ।।११।।

-: शब्दार्थ :-

भक्तानां जन्तूना - कनिष्ठ उपासको का
शुभावहे - शुभ करने वाली
नित्यम् - सदा
उद्यते - उद्यमवंत ! तत्पर रहनेवाली
देवि - हे देवी
सम्यग् दृष्टिनां - सम्यगदृष्टि वाले जीवों को
धृति - स्थिरता
रति - हर्ष
मति - विचार-शक्ति
बुद्धि - अच्छे बुरे का निर्णय करने की शक्ति
जिन-शासन - जैन धर्म में
निरतानां - अनुरक्त
शांति - शांतिनाथ भगवान को
नतानां च - नमन करने वाली
जगति - जगत में
जनतानां - जनता के
श्री-सम्पत् - कीर्ति - लक्ष्मी, संपति, कीर्ति
यसो-वर्द्धनि - यस को बढाने वाली
जय - तुम जय पाओ
देवि - हे देवी
विजयस्व - तुम विजय पाओ

अर्थ-संकलना - कनिष्ठ उपासको का शुभ करनेवाली, सम्यगदृष्टि वाले जीवों को धृति, रति, मति और बुद्धि देने के लिये सदा तत्पर रहने वाली, जैनधर्म में अनुरक्त तथा शांतिनाथ भगवान को नमन करने वाली जनता को लक्ष्मी, संपति, किर्ति और यश में वृद्धि करने वाली हे देवी ! तुम जगत में जय पाओ ! विजय पाओ....१०-११

मूल -

सलिलानल-विष-विषधर-दृष्ट ग्रह -राज-रोग-रण भयतः ।
राक्षस-रिपुगण-मारी-चौरेति-स्वापदादिभ्यः ।।१२।।
अथ रक्ष रक्ष सुशिवं, कुरु कुरु शांतिं च कुरु कुरु सदेति ।
तुष्टि कुरु कुरु पुष्टिं, कुरु कुरु स्वस्तिं च कुरु कुरु त्वम् ।।१३।।

-: शब्दार्थ :-

सलिलानल - जल अग्नि
विष - जहर
विषधर - साँप
दुष्ट ग्रह-राज - दुष्ट ग्रह, राजा
रोग-रण भयतः - रोग, लडाई ये आठ प्रकार के भय
राक्षस-रिपुगण- मारी-चौरेति - श्वापदादिभ्यः - राक्षस, शत्रुसमुह मरकी, चोर, पशुओं वगैरह के उपद्रव
अथ - अब
रक्ष रक्ष - रक्षणकर, रक्षणकर
सुशिवं कुरु कुरु - निरुपद्रवता कर, कर
शांति च कुरु कुरु - और शांति कर कर
सदा - निरंतर
इति - समाप्त
तुष्टि कुरु कुरु - तुष्टि कर तुष्टि कर
पुष्टिं कुरु कुरु - पुष्टि कर पुष्टि कर
स्वस्तिं च कुरु कुरु - और क्षेम कर क्षेम कर
त्वं - तुम

अर्थ-संकलना - और तुम जलभय में से, अग्नि भय में से, विष में से, विषधर भय में से, दुष्ट ग्रह भय में से, राज भय में से, राक्षस के उपद्रव में से, शत्रु समुह के उपद्रव में से, मरकी के उपद्रव में से, चोर के उपद्रव में से, इति संज्ञक उपद्रव में से, शिकारी पशुओं के उपद्रव में से, और भूत, पिशाच तथा शाकिनीओ के उपद्रव मेंसे रक्षण कर, रक्षण कर ! उपद्रव रहित कर उपद्रव रहित कर; शांति कर, शांति कर, तुष्टि कर, तुष्टि कर, पुष्टि कर, पुष्टि कर, क्षेम कर क्षेम कर.....१२-१३

मूल-

भगवति ! गुणवति ! शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्तीह कुरु कुरु जनानाम् ।
ओमिति नमो नमो ह्रॉं ह्रीँ ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीँ फूट् फूट् स्वाहा ।।१४।।

-: शब्दार्थ :-

भगवति - हे भगवती
गुणवती - हे गुणवती (तीन गुणवाली - सत्व, रजस् - तमस्
शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्ति-उह कुरु कुरु - यहाँ निरुपद्रवता, शांति, तुष्टि, पुष्टि और क्षेम कर क्षेम कर
जनानाम - लोगों को
ॐ नमो नमो ह्रॉं ह्रीँ ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीँ फूट् फूट् स्वाहा यह एक प्रकार का षोडशी (दैवी) मंत्र है

अर्थ-संकलन - हे भगवती ! हे गुणवती ! तुम यहाँ लोगों को निरुपद्रवता, शांति, तुष्टि, पुष्टि और क्षेम कर, क्षेम कर। ॐ नमो नमो ह्रॉं ह्रीँ ह्रूँ ह्रः यः क्षः ह्रीँ फूट् फूट् स्वाहा ।

श्री दंडक प्रकरण

श्री गजसारमुनि

गति - आगति द्वार.....

तेउ वाउ गमणे, पुढवी पमुहंमि होइ पय नवगे ।
पुढवाइ ठाण दसगा, विगलाइ तियं तहिं जंति ।।३६।।

तेउकाय और वायुकाय का गमन पृथ्वीकाय आदि नवपद के बारे में होता है । पृथ्वीकायादि दस स्थानक में से निकले हुए जीव विकलेन्द्रिय के तीन दंडक में और तीन विकलेन्द्रिय के जीव पृथ्वीकाय आदि दस पद में जाते है ।

तेउकाय और वायुकाय की गति पृथ्वीकायादि नौ पदों में होती है, पृथ्वीकायादि नवपद में पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय एवम् तिर्यंच पंचेन्द्रिय का समावेश होता है ।

पृथ्वीकायादि दस स्थानक के जीवों की गति विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय) के तीन दंडक में होती है ।

विकलेन्द्रिय तीन दंडक की गति पृथ्वीकायादि दस पदों में होती है ।

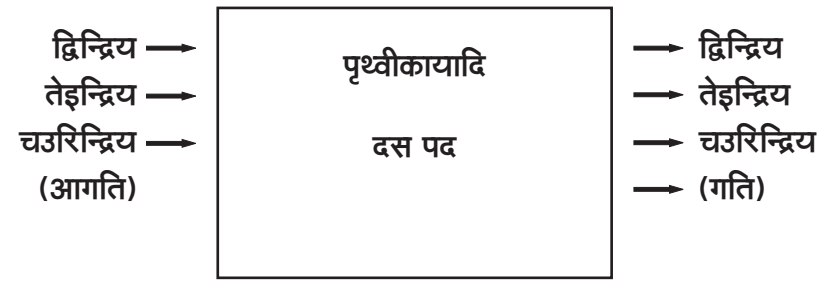

गमणा गमणं गब्भय, तिरियाणं सयल जीव ठाणेसु ।
सव्वत्थ जंति मणुआ, तेऊ वाऊ हिं नो जंति ।।३७।।

गर्भज तिर्यंचो की गति, आगति सब दंडको में होती है । गर्भज मनुष्य सब दंडको में उत्पन्न होते है, पर तेउकाय और वायुकाय के जीव मनुष्यों में नहीं जाते ।

सब दंडको के सब जीव गर्भज, तिर्यंच गति में जाते है । वैसेहि गर्भज तिर्यंच जीव सब दंडको में उत्पन्न होते है ।

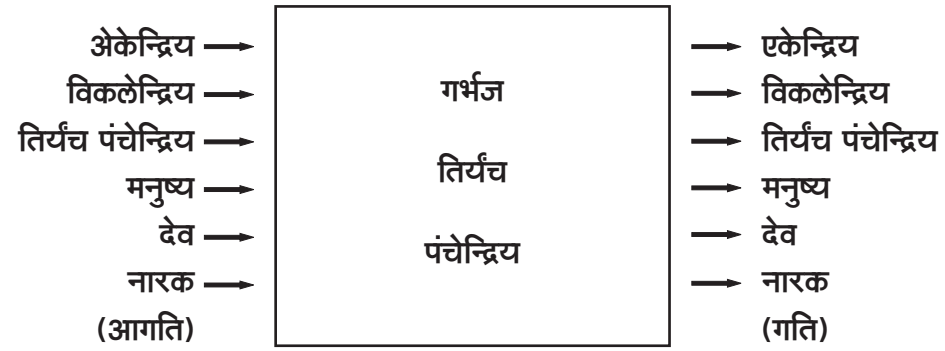

गर्भज मनुष्य सब दंडकों में उत्पन्न होता है (गति) परंतु तेउकाय और वायुकाय मनुष्यपने उत्पन्न नहीं होते। (आगति)

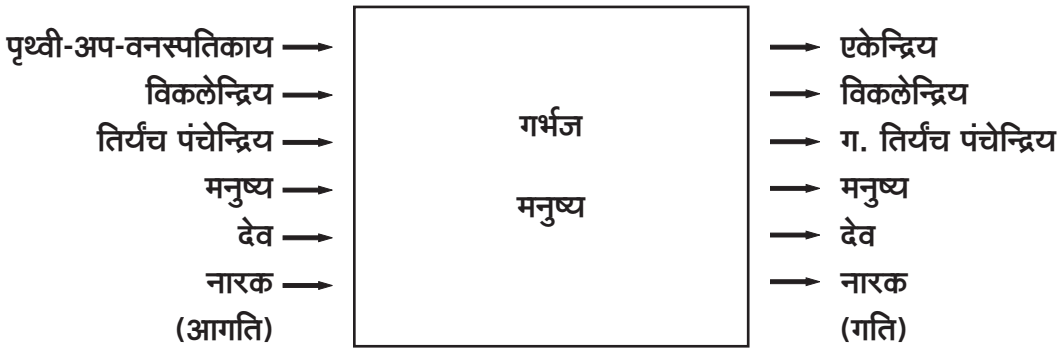

(२४) वेद द्वार

वेय तिय तिरि नरेसु, इत्थी पुरिसोय चउविह सुरेसु ।
थिर विगल नारअेसु, नपुंसवेओ हवइ अेगो ।।३८।।

तिर्यंच और मनुष्यों के तीन वेद होती है । चार प्रकार के देवताओं में स्त्री और पुरुषवेद होते है । पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और नारकीयों में एक नपुंसक वेद होता है ।

पुरूषवेद, स्त्रीवेद एवं नपुंसक वेद ये तीन वेद होते है । ये तीनों वेद गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य के दंडक में होते है । चार प्रकार के देवों के १३ दंडक में पुरूष और स्त्री ऐसे दो ही वेद होते है । पृथ्वीकायादि पाँच, द्विन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय के तीन एवं नरक इन नौ दंडकों में एक ही नपुंसकवेद होता है ।

वेद		
दंडक संख्या	**दंडक के नाम**	**वेद**
२	तिर्यंच पंचेन्द्रिय मनुष्य	(३) स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद
१३	देव	(२) पुरुषवेद-स्त्रीवेद
९	स्थावर के पाँच,विकलेन्द्रिय तीन,नारक	(१) नपुंसक वेद

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

शैलेशीकरण

शैलेषीकरणारंभी, वपुर्योगेससूक्ष्मके ।

तिष्टन्नुद्धर्वास्पदंशीघ्रं योगातीतंयियासति ।।१०२।।

केवली भगवंत जिनका आयुष्य सिर्फ पाँच ह्रस्वाक्षर के उच्चारण जितना ही है तथा पर्वत के समान जिनका शरीर निश्चिल है उन्हें शुक्लध्यान के चौथे ध्यान स्वरुप शैलेशीकरण होता है ।

सूक्ष्म काययोग में रहकर पर्वत की तरह स्थिर रहना ही शैलेशीकरण है । इस शैलेशीकरण का प्रारंभ कर चौदहवे अयोगी गुणस्थान में जाने की तैयारी करते है ।

सयोगी केवली गुणस्थान के अंत में क्या होता है यह बताते है -

अस्यांतेंगोदयच्छेदात स्वप्रदेश घनत्वतः ।

करोत्यं त्यांगसंस्थान तिभागोनावगाहनम् ।।१०३।।

इस सयोगी गुणस्थानक के अंत में अंतिम समय में औदारिक द्विक, विहायोगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षटक, अगुरुलघु चतुष्क, वर्णादि चतुष्क, निर्माण नाम कर्म, तेजस कार्मण द्विक, प्रथम संघयण, स्वर द्विक, एक वेदनीय इन तीस प्रकृतियों का उदय में विच्छेद होता है। अंगोपांग के उदय का विच्छेद होने से जो अंत में अवगाहना थी उससे त्रिभागन्यून्य अवगाहना करता है । सामान्य से संपूर्ण शरीर में आत्मा व्याप्त होता है, परंतु यहाँ पर अवकाश वाले भाग (रिक्त भाग) पूर्ण हो जाने से १/३ भाग घट जाता है जिससे २/३ भाग का घन रहता है (शरीर छः फीट का होता १/३ याने २ फीट कम होकर २/३ याने ४ फीट की अवगाहना रहती है ।)

इस गुणस्थानक में केवल वेदनीय कर्म का बन्ध है । बयालीस प्रकृतियों का उदय है और पच्यासी (८५) प्रकृतिकी सत्ता होती है ।

(१४) अयोगी गुणस्थानक

अथायोगिगुणस्थाने, तिष्ठतोस्य जिनेशितुः ।

लघुपंचाक्षरोचारोच्यार, प्रतितैवास्थितिर्भवेत् ।।१०४।।

केवली भगवंत जब सूक्ष्म काययोग को रोकते है तभी आत्मा को शरीर से पृथक करने का महत्व का कार्य संपन्न हो जाता है । बाकी कर्मों का क्षय होते ही एक समय में आत्मा सिद्धशीला पर पहुँच जाती है । चौदहवें गुणस्थानक की स्थिति ही पाँच ह्रस्वाक्षर अ,इ,उ,ऋ,लृ बोल पाते है उतनी ही होती है ।

तत्रनिवृत्तिशब्दान्तुं समुच्छिन्नक्रियात्मकम् ।

चतुर्थभवतिध्यान - मायोगिपरमेष्ठिनः ।।१०५।।

अयोगी भगवंत को अयोगी गुणस्थानक में समुच्छिन्नाक्रिया नामक चतुर्थ शुक्लध्यान होता है । जिसका स्वरुप आगे बताने में आयेगा । इस ध्यान में अंत में अनिवृत्ति शब्द है अतः ध्यान का नाम ''समुच्छिन्नक्रिया अनिवृत्ति'' ऐसा होता है ।

समुछिन्नाक्रियायत्र सूक्ष्मयोगात्मिकापिहि ।

समुछिन्नक्रियंप्रोत्कं, तद्द्वार मुक्ति वेश्मनः ।।१०६।।

जिस ध्यान में सूक्ष्म काययोग रुप क्रिया की सर्वथा निवृत्ति होती है, वह ध्यान समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति कहलाता है । यह ध्यान मुक्तिमहल के प्रवेशद्वार समान है ।

देहास्तित्वेस्त्ययोगित्वं कथतद्घटतेप्रभो ।

देहाभावेतथाध्यानं, दुर्घटं घटते कथम् ।।१०७।।

शिष्य गुरु को प्रश्न पूछता है ''हे स्वामीन् ! सूक्ष्म काययोग होने पर भी अयोगीपना कैसे घट सकता है ?''

सूक्ष्मकाय योग का भी अभाव हो तो ध्यान किस तरह संभवित है ? देह के अभाव में ध्यान का भी अभाव होना चाहिये क्योंकि देहबिना ध्यान नहीं हो सकता ।

आचार्य भगवंत शिष्य के सवाल का जवाब देते है -

वपयषोत्रतिसूक्ष्मत्वा च्छीघ्रेभाविक्षयत्वतः ।

कायाकार्यसमर्थत्वात् सतिकायेप्ययोगता ।।१०८।।

तच्छरीराश्रयाद्ध्यान मस्तीतिनविरुद्यते ।

निजशुद्धात्मचिद्रुप निर्भरानन्दशालिन ।।१०९।।

हे शिष्य ! इस अयोगी गुणस्थानक का सूक्ष्म काययोग है, फिर भी वह अयोगी कहलाता है क्योंकि वहाँ काययोग की अति सूक्ष्मता है । वैसे भी उस काययोग का जल्द ही नाश होनेवाला है । यह सूक्ष्म काययोग कार्य का साधन बनने में असमर्थ है । तभी तो सूक्ष्मकाय योग होने पर भी अयोगी कहलाता है ।

शरीर होने से अथवा सूक्ष्म काययोग का आश्रय करने पर भी ध्यान हो इसमें कोई विरोध नहीं है । अयोगी गुणस्थानवर्ती परमेष्ठि है, वे खुद के शुद्ध आत्मद्रव्य में अत्यंत आनंद मनाते है । अतः उसे ध्यान कहने में भी कुछ अयोग्य नहीं है ।

ध्यान में निश्चय - व्यवहार

आत्मानमात्मनात्मैव, ध्याताध्यायति तत्वतः ।

उपमचारस्तदन्योहि, व्यवहारनयाश्रित ।।११०।।

अयोगी गुणस्थानवर्ती केवली भगवंत निश्चयनयसे जो विचार करते है, वह तो अपने आत्मद्रव्य द्वारा आत्मा का ही ध्यान करते हैं और जो अष्टांग योग है वह तो केवल व्यवहारमात्र है ।

चिद्रूपात्ममयोगीगी, न्युपान्त्यसमये द्रुतम् ।

युगपत्षपयेत् कर्म-प्रकृतिनां द्विसप्ततिम् ।।१११।।

अयोगी गुणस्थानवर्ती केवलज्ञानी योगी अयोगी गुणस्थानक के उपांत्य समय में समकाल में बहत्तर (७२) कर्म प्रकृतिओं को खपाता है । ये बहात्तर प्रकृतियाँ कौनसी है यह बताते है -

देह बंधन संघाता प्रत्येकंपंचपंच च ।

अंगोपांगत्रगयं चैव, षट्कसंस्थान संज्ञकम् ।।११२।।

शरीर ५, बंधन ५, संघातन ५, अंगोपांग ३ संस्थान ६ ये २४ प्रकृतियाँ

वर्णाः पंचव रसाः पंच, षट्कंसंहननात्मकम् ।

स्पश्प्रष्टकं च गंधौ द्वौ, नीचानदियदुर्भगम् ।।११३)

पांच वर्ण २९, पांच रस ३४, छःसंघयण ४०, आठ स्पर्श ४८ दो गंध ५० , नीच गोत्र ५१, अनादेय नाम कर्म ५२ एवं दौर्भाग्य नामकर्म ५३

तथागुरुलघुत्वाख्य-मुपघातोन्यघतिताः ।

निर्माणमयपर्याप्त-मुच्छावासश्वायशस्तथा ।।११४।।

अगुरुलघु नामकर्म ५४, उपघात नामकर्म ५५, पराघात नामकर्म ५६, निर्माण नामकर्म ५७ अपर्याप्त नामकर्म ५८, श्वासोश्वास नामकर्म ५९, तथा अयश नामकर्म ६०

विहायोगतियुग्मंच, शुभास्थैर्यद्वयंपृथक ।

गतिर्दिव्यानुपूर्वीच, प्रत्येकंच स्वरद्वयं ।।११५।।

शुभविहायो गति ६१, अशुभविहायो गति ६२, शुभ नामकर्म ६३, अशुभ नामकर्म ६४ स्थिर नामकर्म ६५ , अस्थिर नामकर्म ६६, देवगति ६७ , देवानुपूर्वी ६८ , प्रत्येक नामकर्म ६९, सुस्वर नामकर्म ७०, तथा दुःस्वर नामकर्म ७१

वेद्यमेकतरंचेति, कर्मप्रकृतयःखलु ।

द्वासप्ततिरिमामुक्तिअपुरीद्वारार्ग लोपमाः ।।११६।।

एक शाता अथवा अशाता वेदनीय इन बहत्तर प्रकृतियों को चौदहवें गुणस्थानक का एक समय बाकी होता है, उसके पूर्व खपा लेता है । ये बहत्तर प्रकृतियाँ कैसी है यह बताते हुए कहते है की ये प्रकृतियाँ मुक्तिनगरी के द्वार के अर्गला समान है । जिस तरह दरवाजे के पीछे रही हुई अर्गला लगाने से खोलना कठीन बन जाय उसी तरह जब तक ये बहत्तर प्रकृतियाँ रहती है, तब तक जीव मुक्तिनगर में प्रवेश नहीं कर सकता । अतः वे प्रकृतियाँ अर्गला के समान है ।

अन्त्येह्योकतरंवेघंध - मादीयत्वंचपूर्णता ः

त्रसत्वंबादरत्वंहि मनुष्यायुश्वसद्यशः ।।११७।।

अयोगी केवली गुणस्थानक के अंतसमय केवली भगवंत वेदनीय १, आदेय नामकर्म २, पर्याप्त नामकर्म ३, त्रस नामकर्म ४ बादर नामकर्म ५ , मनुष्यायु ६, यशनामकर्म ७ इन प्रकृतियों का क्षय करते है ।

नृगतिश्चानुपूर्वीच, सौभाग्यंचोच्चगोत्रता ।

पंचाक्षत्वंतथा तीर्थ-कृन्नमेतित्रयोदश ।।११८।।

मनुष्यगतिनामकर्म ८, मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म ९, सौभाग्य नामकर्म १०, उच्चगोत्र ११ पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म १२ , एवं तीर्थंकर नामकर्म १३, इन तेरह प्रकृतियों का क्षय करता है ।

क्षयंनीत्वासलेकान्तं, तत्रैवसमयेव्रजेत् ।

लब्धासिद्धत्वपर्यायः परमेष्ठीसनातनः ।।११९।।

केवली भगवंत चौदहवे गुणस्थानक के अंत समय में पूर्वोक्त तेरह प्रकृतियों का क्षय कर एक समय में लोक के अंत में रहे हुए स्थान में जाते है । मुक्ति में जाते है, सिद्ध पर्याय के प्राप्त करते हैं ।

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत
लक्ष क्षत्रिय प्रतिबोधक

आधारग्रंथ
अचलगच्छ दिग्दर्शन -श्री पार्श्व

(१७) "शतपदी" प्रणेता श्री धर्मघोषसूरि

मारवाड के अंतर्गत महावपुर में वि.सं. १२०८ में उनका जन्म हुआ था, उनका पूर्वाश्रम का नाम था धनदत्तकुमार ।पिता श्रीमाली ज्ञाति के मुकुटमणि श्रेष्ठी श्रीचंद और माता राजलदे, जन्म से ही धनदत्तकुमार को धर्म के संस्कार प्राप्त हुए, इन संस्कारो ने ही उन्हैं त्याग मार्ग की ओर मोडा ।

वि.सं. १२१६ में अंचलगच्छाधिपती जयसिंहसूरि ने राजस्थान में उग्र विहार करते हुए महावपुर नगर में पदार्पण किया । आठ वर्ष के कोमल वय के धनदत्तकुमार की, सूरि की वाणी ने मोहनी जागृत की, त्याग मार्ग के पथिक बनने की बालक को अभिलाषा जागी इसलीये अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर उन्होंने सूरि का संग अपनाया, वि.सं. १२१६ में हरिवर गांव में गुरु ने उन्हें उत्सवपूर्वक दीक्षा देकर उनका मुनि धर्मघोष ऐसा नामाभिकरण किया ।

राजस्थान ने प्रसंगोपात वीरपुरुषों और त्यागीयो की अमूल्य भेट धरी है, जिसके लिये मैया भारती गौरव ले सके ऐसा है । अंचलगच्छ प्रवर्तक आर्यरक्षितसूरि इस प्रदेश की भूमि में ही पोषित हुए थे, उनके प्रशिष्य धर्मघोषसूरि भी इसी प्रदेश की ही पैदाईश थे, जिसके लिये अचलगच्छ ही नहीं, समग्र जैन शासन गौरव की भावना अनुभव करता है । इन दोनों महापुरुषो का प्रदान गच्छ या संप्रदाय तक ही सीमित नहीं था, पश्चिम भारत की शैक्षणिक धार्मिक उसी तरह सांस्कृतिक प्रवृति के वे केन्द्र बिन्दु में रहे थे ।

व्रत ग्रहण करने के पश्चात नवोदित मुनि ने अध्ययन क्षेत्र में अग्रिम सिद्धियाँ हासिल की । अपने गुरु की तरह चरित्र नायक ने आगमो के अध्ययन में विशेष अभिरुचि दर्शायी । आर्यसक्षितसूरि तथा जयसिंहसूरी जैसे महापुरुषो की छत्रछाया में पलने का विरल सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ । धर्मघोषमुनि की प्रतिभा की घडाई में उक्त दोनों महापुरुषो ने अहम् भूमिका निभायी, परिणाम स्वरुप अंचलगच्छ को दिग्गज विद्वान प्राप्त हो पाया ।

वि.सं. १२३४ में भट्टोहरि गांव में गुरु ने उन्हें योग्य जानकर आचार्यपद पर विभूषित किया । इस एक ही प्रसंग पर जयसिंहसूरि ने एक साथ बीस शिष्यो को आचार्यपद पर प्रस्थापित किया था, गच्छ को एक साथ बीस आचार्य प्राप्त होने का ऐसा यह प्रथम और अंतिम प्रसंग था । आर्यरक्षितसूरि के समय में चारेक हजार साधु-साध्वीजी थे, तब आचार्यो की संख्या सिर्फ बारह थी । इस दृष्टि से तुलना करे तो जयसिंहसूरि का त्यागी परिवार पांच हजार से भी ज्यादा होगा, ऐसी संभावना की जा सकती है, वास्तव में अंचलगच्छ का भाग्यरवि उस समय मध्याह्न में तप रहा था ।

शांकभरी के प्रथम राजा का नाम अलग-अलग हाथ प्रतो में जुदा-जुदा मिलता है, परंतु उसमें कहा गया है कि मद्यपान और शिकार का वो बहुत ही शौकीन था, उसी में वो मशगूल रहता परंतु धमघोषसूरि के समागम में आने के पश्चात राजा की दृष्टि में परिवर्तन आ गया । रात दिन नशे में रचा-पचा रहने वाला यह राजा चरित्रनायक का उपदेश सुनकर श्रीपार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा को पूजने लग गया, सारे व्यसन छोडकर उसने

जैन धर्म स्वीकार किया ।

स्वयं को सच्चे मार्ग पर मोडने के बदले राजा ने धर्मघोषसूरि को एक हजार सुवर्ण मुद्राये धरी, परंतु निःस्पृही गुरु ने उनका आदरपूर्वक अस्वीकार किया । राजा ने भी वो मुद्राये वापस नहीं रखी, गुरु को समर्पित वस्तु वापस कैसे रखी जा सकती है ? इसलीये चरित्रनायक के आचार्यपद महोत्सव प्रसंग पर राजा ने मुद्राये खर्च की ।

धर्मघोषसूरि के उपदेश से राजा ने अपने नगर में भव्य जिनालय बंधवाया और महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा करायी । चरित्रनायक की उसने बहुत भक्ति की और अपनी पर्षदा में उनका अपूर्व सत्कार किया ।

धर्मघोषसूरि नाम धारक अनेक आचार्य हो गये है । ''बोधित शाकंभरी भूपः'' ऐसे अन्य धर्मघोषसूरि राजगच्छीय शीलभद्रसूरि के शिष्य थे । शाकंभरी के नृपतियो के साथ का जैनाचार्यो का सम्पर्क इतिहास प्रसिद्ध है, उसमें चरित्रनायक ने एक उज्जवल पृष्ठ जोडा । अंचलगच्छ के आचार्य ने किसी बडे राजा को प्रतिबोध दिया हो ऐसा यह प्रथम प्रसंग होने से उसकी महत्ता गच्छ के इतिहास में विशेष होना यह स्वभाविक है । वि.सं. १२३४ में यह प्रसंग घटा होगा ऐसे निर्देश मिलते है ।

अंचलगच्छ - प्रवर्तक आर्यरक्षितसूरि ने तथा उनके प्रभावक पट्टशिष्य जयसिंहसूरि ने छोटे राजाओ, ठाकुरो आदि को प्रतिबोध दिया और उन्हें जैन धर्मानुरागी बनाया परंतु धमघोषसूरि ने महाराजा माने जाते शाकंभरी, सांभर देशाधिपति को प्रतिबोध देने वाले आचार्य के रुप में उच्च मान प्राप्त किया, इसके द्वारा उन्होंने जैन शासन की उसी तरह अंचलगच्छ की शान भी बढायी ।

वि.सं. १२४६ में धर्मघोषसूरि ने राजस्थान के अन्तर्गत खीमली नगर में डोडिया ज्ञातीय राजपूत राऊत बोहडी को प्रतिबोध देकर जैन धर्मी बनाया, उसके कुटुंब को ओसवाल ज्ञाति में मिला देने में आया उसके वंशज बहुल या बहुलसखा पहचान से प्रसिद्ध है ।

धर्मघोषसूरि के उपदेश से बोहडी ने धर्मकार्यो में नेतृत्व भरा भाग लिया और बहुत नाम कमाया । उसने तीर्थसंघ निकलाने से संघवी पद प्राप्त किया, उस समय के ख्यातिप्राप्त श्रावकगणों में उसकी गिनती होती है । गुजरात के सुप्रसिद्ध मंत्री बंधु वस्तुपाल एवं तेजपाल ने बोहडी की उच्च सेवाओ के उपलक्ष्य में उसे ''संघनरेन्द्र'' की उच्च उपाधि प्रदान की, इस पर से उसके असाधारण प्रभाव का परिचय मिलता है ।

धर्मघोषसूरि ने उत्तर भारत में विहार करके वहां भी जैन धर्म का महिमा बहुत फैलाया, उनके उपदेश के परिणाम से वहां अनेक धर्मकार्य हुए, अनेक जीवो ने प्रतिबोध पाया ।

धर्मघोषसूरि विहार करते हुए गंगानदी के पास के मुक्तेसरगढ पधारे । इस स्थानमें करवत रखवाने के महत्व के केंद्र के रुप में देशभर में प्रसिद्धि प्राप्त की हुई थी । उस समय लोगों में ऐसी मान्यता प्रचलित थी कि जो कोई इच्छुक इस पवित्र स्थान पर करवत रखवा कर जीवन का स्वेच्छा से अंत लाये तो उसकी आकांक्षा अनुसार की सिद्धि पुनर्जन्म में अवश्य प्राप्त होती है । इस भ्रमणा से गैर मार्ग की ओर खींचकर हजारो श्रद्धालुओ की यहां आहूति दी जाती, करवत रखवाने के विचार ने ऐसा दीवानापन लगाया कि लोगों की संख्या प्रतिदिन बढती ही जाती थी ।

धर्मघोषसूरि को वहां के नरसंहार के दृश्यो ने भारी आघात पहुँचाया, ऐसे दुष्ट व्यवसाय में ब्राह्मण

पडे थे इससे उन्हें भरपूर आश्चर्य हुआ । मनचाहे पुनर्जीवन की चाहत में इहलोक और इहजीवन को समाप्त कर देने वालो को उन्होंने उपदेश दिया और मानव भव का महात्म्य सबको समझाया, उनकी वाणी सुनकर लोग बहुत प्रभावित हुए । धर्मघोषसूरि की प्रेरणा से ऐसे अनिष्ट से दूर रहने का सबने कबूल किया, वहां का अग्रणी विनकर भट्ट तो आचार्य का परम भक्त बन गया, उसने जैनधर्म का उपदेश अच्छा लगने से स्वेच्छा से वो धर्म अंगीकार किया ।

कहा जाता है कि वहां के लोगों ने धर्मघोषसूरि को कोई चमत्कार दिखाने का आग्रह किया, चमत्कार के प्रभाव से ही ऐसे भयंकर अनिष्ट का निर्मूलन किया जा सके ऐसा था । इसलीये सूरि चमत्कार दिखाने को राजी हुए, उन्होंने १०८ कामणीयाँ मंगायी और एक के उपर एक जमाकर उसके उपर वे पद्मासन में बिराजे । नवकारवाली का वे एक-एक मनका फेरते जाते वैसे वैसे उनके आसन के नीचे से एक-एक कामणी निकाल लेने में आती । नवकारवाली के १०८ मनके पूरे होने पर सारी कामणीयाँ खींच ली गयी थी फिर भी गुरु तो उर्ध्व स्थिति में पूर्ववत रहे ! यह दृश्य देखकर लोग बहुत ज्यादा प्रभावित हुए, इसके पश्चात करवत रखने की अनिष्ट प्रथा हमेशा के लिये नाबूद हो गयी, ऐसे कुरिवाज को निर्मूल करवाने का श्रेय धर्मघोषसूरि के हिस्से में जाता है ।

दिनकर भट्ट और उनके अनुयायीयो के जैन धर्म स्वीकारने पर उनकी जाति ने उनका सामाजिक बहिष्कार किया । विवाह आदि बाबतो में वे लघुमति में होने से उन्हें अनेक मुश्किलो का समना करना पडा, इससे धर्मघोषसूरि ने दिल्ली का संघ एकत्रित करके उसमें नवोदित जैनो को ओसवाल जाति में मिला दिया, इस प्रसंग से क्षत्रियो की तरह ब्राह्मणो को भी जैनधर्म अंगीकार करने से ओसवाल ज्ञाति में प्रवेश मिला ।

वि.सं. १२६९ में आचार्य भगवंत भालाणी नगर में पधारे वहां के परमार वंशीय क्षत्रिय रणमल के कुंवर हरिया ने उनका धर्मोपदेश सुनकर जैनधर्म अंगीकार किया । उनके धर्मपरिवर्तन के संबंध में पट्टावली में एक चमत्कारिक आख्यायिका वर्णित करने में आयी है । नवपरिणित हरिया को रात्रि में जहरीले सर्प के डंस लेने से उसकी मृत्यु हो गयी । शमशानभूमि के पास स्थंडिल हेतु जा रहे चरित्रनायक को यह वृतांत मालूम पडने पर उन्होंने चिता पर रखे गये उसका देह देखने की इच्छा व्यक्त की, सिद्धपुरुष जानकर जलाने आये हुओ ने उन्हें हरिया का मृतदेह बताया । कल्पांत करते स्वजन घडी भर के लिये तो धर्मघोषसूरि की चेष्टा से शांत हो गये । कहा जाता है कि गारुडी मंत्र के प्रभाव से धर्मघोषसूरि ने हरिया के शरीर में से विष दूर किया, कुछ क्षणों में तो मृत नवजवान सचेतन होकर आलस मरोडता हुआ बैठ गया । नाते-रिश्तेदार यह देखकर अत्यंत हर्षित हुए ।

धर्मघोषसूरि के उपदेश से रणमलजी के कुटुंब ने जैन धर्म स्वीकारने पर उन्हें ओसवाल ज्ञाति में मिलाने में आया । हरिया के वंशज हरिया गोत्र से प्रसिद्ध हुए, वंशवृद्धि होने पर इस गोत्र की भी अनेक उपशाखाये हुई ।

हरिया शाह ने धर्मघोषसूरि की अपूर्व भक्ति की । उनके उपदेश से वि.सं. १२६९ में भालाणी में श्रीशांतिनाथ भगवान का भव्य जिनालय बंधवाकर बिंब प्रतिष्ठा करवाकर उसने अनेक धर्मोत्सव किये । हरिया वंशजो ने भी उसके द्वारा प्रारंभ किये गये धर्मकार्यो को जारी रखा । घृतलहाण (घी की प्रभावना) करने वाले हरिया शाह के वंशजो का वर्णन प्राचीन प्रमाण-ग्रंथो में से उपलब्ध होता है । उसके कार्य-सौरभ के साथ इस वंश को प्रतिबोध देने वाले चरित्र नायक का स्मरण भी हमेशा जुडा हुआ रहेगा ।

धर्मघोषसूरि के प्रभाव की लहर उनके जन्म प्रदेश राजस्थान में सविशेष प्रसारित हुई । उनका इस प्रदेश में उग्र विहार भी इसमें कारणभूत था, प्रमाण - ग्रंथो की संक्षिप्त नोट भी इस संबंध में बहुत कुछ कह जाती है, उनके उपदेश के परिणाम स्वरुप पांच सा बहादुर लडाकु टूटे, झालोर में बील्ह प्रमुख अनेक भाविको ने स्वेच्छापूर्वक जैनधर्म अंगीकार किया, उसी तरगह साकरिया श्रीमालीओ की स्थापना हुई ।

झालोर के उपयुक्त प्रतिबोध के बाद धर्मघोषसूरि ने देदाशाह के अतिआग्रह से चित्तोड में पदार्पण किया । एक बार देदाशाह की बहन ने उत्सव के प्रसंग पर चरित्रनायक सहित बत्तीस मुनिवरो को गोचरी हेतु भावपूर्वक निमंत्रण दिया, हकीकत में उसने भोजन में विष मिलाकर त्यागीयो की जिंदगी का अंत लाने का षणयंत्र रचा था । ध्यान के बल से धर्मघोषसूरि को यह बात ख्याल में आ गयी, उन्होंने सबको वहां नहीं जाने का फरमाया, इस तरह अनेक मुनिवरो की जिंदगी बच गयी ।

उक्त प्रसंग से चरित्रनायक के हृदय को बहुत ही आघात पहुंचा । गोचरी के लिये गृह-गृह पर पदार्पण करते और उसके द्वारा धर्म के उदात्त आदर्शो की सौरभ फैलाते मनिवरो के जीवन ऐसे षणयंत्रो का भोग बने तो किसे आघात नहीं लगेगा ? विषमकाल में निर्ग्रंथो का जीवन निर्वाह कैसे हो पायेगा ? ऐसे तो अनेक विचार चरित्रनायक के हृदय को स्पर्श कर गये । ध्यान मे बिराजित धर्मघोषसूरि के समक्ष शासनदेवी चकेश्वरी प्रत्यक्ष प्रकृट हुए और खात्री दी कि ''मैं भगवान महावीर का धर्मशासन प्रवर्तमान रहेगा तब तक विषम समय पर अंचलगच्छ को सहायता पहुंचाऊंगी ।'' ऐसा पट्टावली में बताया गया है । संक्षिप्त में उक्त घटना से स्तब्ध हो गये मुनिवरो सहित भावुक श्रावक अनुयायीयो को चरित्रनायक ने देवीशक्ति धर्मपक्ष में रहेगी ऐसी दिलास दी होगी और सभी के संशयो का निवारण किया होगा ।

एक प्रसंग पर धर्मघोषसूरि अपने सोलह शिष्यो सहित विहार कर रहे थे । मार्ग में उन्हें एक दिगंबर मुनि मिले, उन्होंने कवठि आदि भार उठाकर चल रहे मुनिवृंद को संबोधित करते हुए मजाक किया कि ''यह सैन्य किसके उपर चढाई करने जा रहा है ? हाजर जवाबी गुरु ने भी इस व्यंग्य का तुरंत ही लौटता उत्तर दिया कि ''एक सगोत्री नग्न हुआ है , ऐसा सुना है उसके उपर !'' चरित्रनायक के ऐसे सनसनाते मार्मिक वचन से दिगंबर मुनि ने प्रभावित होकर उनके पैर पडे । धर्मगोषसूरि के शिष्य के रुप में वे जीवन भर रहे ।

मेवाड के अन्तर्गत झाडापल्लीगच्छ के जयप्रभसूरि आचार्य के साथ धर्मघोषसूरि का संपर्क होने पर उनका यह प्रथम मिलन उनके बीच सदा के लिये गुरु-शिष्य की गाँठ बांधता गया । चरित्रनायक के वाकचातुर्य से चमत्कृत होकर जयप्रभसूरि ने अंचलगच्छ की समाचारी स्वीकार ली । धर्मघोषसूरि ने उन्हें योगोद्वहन करवाया, सिद्धान्त वगैरह पढाये, आचार्यपद दिया, उनके श्रावक भी अंचलगच्छ में आये ।

जयप्रभसूरि के प्रतिबोध के प्रसंग भट्टग्रंथो में से मिलते है । वि.सं. १२०८ में हस्तितुंड में जयसिंहसूरि ने अनंतसिंह को प्रतिबोध दिया, अन्य उल्लेखो अनुसार वहां जयप्रभसूरि का नाम है । उसी तरह वि.सं. १२२४ में लोलाडा के राउत फणझर को जयसिंहसूरि ने प्रतिबोध दिया था, वहां भी उनका नाम आता है । वि.सं. १२६६ में झालोर के चौहान वंशीय भीम गांव के राजपूत ने धर्मघोषसूरि के उपदेश से डोड गांव में श्रीवासुपूज्य भगवान का मंदिर बंधवाया था वहां भी प्रतिबोधक तथा उपदेशक आचार्य के रुप में जयप्रभसूरि का नाम मिलता है, संभव है कि गुरु के साथ वे वहां पर उपस्थित रहे होंगें, जो भी होगा पर धर्मघोषसूरि के शिष्य

जयप्रभसूरि भी एक प्रभावक आचार्य हो गये, इसमें कोई शंका नहीं ।

विद्याधर गच्छ के अधिपति सोमप्रभसूरि ने सिंहपुरनगर में चरित्रनायक को अपने गुरुपद पर स्थापित किया । प्राचीन प्रमाण ग्रंथो में से मिलता यह उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है । चिरत्रनायक के प्रभावक व्यक्तित्व का इसके द्वारा हमको स्पष्ट दर्शन हो सकता है । धर्मघोषसूरि ने सोमप्रभसूरि को योगोद्वहन करवाया और शिष्य के रुप में स्वीकारा । विद्याधरगच्छ के श्रावक उक्त प्रसंग से अंचलगच्छीय हुए ।

धर्मघोषसूरि के उपदेश से अनेक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठाये सम्पन्न होने के प्रमाण मिलते है । अंचलगच्छीय पट्टावली की एक प्राचीन हस्तप्रत में सूचना है कि ''वि.सं. १२३६ महिमदावादी पार्श्व प्रतिष्ठा धर्मघोषसूरीणा'' यह अल्प उल्लेख बहुत महत्व का है । इस पट्टावली की नोट में सैंकडो वर्षो के महत्व के प्रसंगो का ही उल्लेख होने से यह प्रतिष्ठा का प्रसंग उस वक्त के यादगार प्रसंगो में से एक होगा, ऐसा कहा जा सकता है ।

श्रीजीरापल्ली तीर्थ में वि.सं. १२३६ के आषाढ वदि ८ गुरुवार को उकेश ज्ञातिय आंबड के पुत्र जगसिंह के पुत्र उदय, भार्या उदयादे के पुत्र नेणे ने धनमल के श्रेयोर्थ धर्मघोषसूरि के उपदेश से देवकुलिका करायी ऐसा प्रतिष्ठा-लेख द्वारा जाना जा सकता है, श्रीजीरापल्ली तीर्थ का महिमा उस अरसे में असाधारण था । अंचलगच्छाधिपतिओ ने इस तीर्थ के विकास में अपनी अह्म भूमिका निभायी है, जिसमें मेरुतुंगसूरि, जयकीर्तिसूरि ओर जयकेशरसूरि का कार्य इस तीर्थ के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा ।

चरित्रनायक के आध्यात्मिक शासन के दरम्यान छोटी-बडी अनेक घटनाये घटी, यहां उनका संक्षिप्त दर्शन प्रस्तुत है - मंत्री कपर्दी के वंशज नाना विसल नाम के श्रेष्ठी ने धर्मघोषसूरि के प्रभावशाली श्रावको में राजमान्य जेताशाह का नाम भी उल्लेखनीय है । वि.सं. १२३६ में बरडा पहाड के पास घुमली गांव में उसने डेढ लाख टंक खर्च करके जेताकुआँ बंधवाया था, वहां के राजा विक्रमादित्य की ओर से उसे बहुत मान मिला था ।

धर्मघोषसूरि की कारकिर्दी का मुख्य अंग है उनका व्यापक विद्याव्यासंग । अंचलगच्छ की ज्ञानप्रवृति का सूत्रपात करने वाले वे प्रथम सारस्वत पट्टधर थे । सौ ग्रंथो से ज्यादा ग्रंथो के रचयिता के रुप में उनकी प्रसिद्धि फैली हुई थी, ऐसा प्राचिन प्रमाणोद्वारा जाना जा सकता है । किसी स्थान पर उन्हें महाकवि भी कहा है, ये सारे उल्लेख उनके पांडित्य को सूचित करते ही है । दुर्भाग्य का विषय यह है कि एकाध अपवाद के सिवाय उनका एक भी ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हो पाया है, उन्होंने मुख्य रुप से चरित्रात्मक ग्रंथो की रचना की, इससे संबंधित महत्वपूर्ण उल्लेख एक स्थान से मिलता है, इसके अतिरिक्त उनकी साहित्य प्रवृति के बारे में विशेष कुछ जाना नहीं जा सकता ।

वि.सं. १२६३ में धर्मघोषसूरि ने प्राकृत में ''शतपदी'' नामक ग्रंथ की रचना की, सामाचारी विषयक यह ग्रंथ बहुत गहन होने से उनके पट्टशिष्य महेन्द्रसिंहसूरि ने उसकी संस्कृत में सरल आवृति रची । अंचलगच्छ की मान्यताओ का स्पष्ट ख्याल इस ग्रंथ पर से आ सकेगा, धर्मघोषसूरि ने इन मान्यताओ की समीक्षा आगम ग्रंथो का आधार रखकर की है, उनकी ऐसी तात्विक समीक्षा पर से उनके विशाल अध्ययन, मनन और चिंतन का भी ख्याल आ जाता है ।

शतपदी के मंगलाचरण पर से जाना जा सकता है की किसी एक आचार्य ने मन में गर्व धारण करके सौ पूर्वपक्ष खडे किये, जिसका धर्मघोषसूरि ने सिद्धांतो के सबूत देकर, कहीं उचित युक्तियो से तथा

सिद्धान्तानुसार ग्रंथो का आधार लेकर प्रत्युत्तर दिया है । इस घटना से प्रस्तुत ग्रंथ का जन्म हुआ ऐसे ग्रंथ की पीठिका में से उल्लेख मिलता है । पाश्चात्य विद्वानो ने इस ग्रंथ की शैली की रोमन कायदेशास्त्रीयो की पद्धति के साथ तुलना की है । इस ग्रंथ के द्वारा धर्मघोषसूरि को अपूर्व कीर्ति प्राप्त हुई है । अंचलगच्छ क्या है ? उसकी विचारधारा क्या है ? उसकी अमानत क्या है ? उसके आदर्श क्या है ? इत्यादि सारे ही प्रश्नो के जवाब इस एक ही ग्रंथ में से मिल सके ऐसा है ।

ग्रंथ के अंतिम अध्याय में अंचलगच्छ की समाचारी की अन्य गच्छो की समाचारी के साथ तुलना की गयी है । ऐसी तुलनात्मक बराबरी द्वारा तत्कालीन विचारधारा का परिमार्जित स्वरुप हमारी समक्ष खडा होता है । ऐसी तुलना करने में भी लेखक ने कहीं पर भी अर्थहीन हठाग्रह का आश्रय नहीं लिया है, या किसी भी पक्ष का निषेधात्मक खंडन नहीं किया है । धर्मघोषसूरि का अभिगम कैसा रचनात्मक था उसकी झांकी इस ग्रंथ के द्वारा अवश्य हो पायेगी । चिन्तनशील साहित्य में यह ग्रंथ एक नयी ही छाप डालता है और इस दृष्टि से उसका मूल्य अनेक गुना है ।

वि.सं. १२६८ में ६० वर्ष की आयु पूर्णकर चरित्रनायक ने तिमिपुर में अनशनपूर्वक कालधर्म पाया । इस तृतीय पट्टधर की विदाई से अंचलगच्छ के उदय - काल की प्रभावक त्रिपुटी का युग पूर्ण हुआ । उस तबक्के का महत्वपूर्ण लक्षण यह था कि उस दरम्यान इस गच्छ के स्वरुप का आकार पूर्णरुप से घड गया था उसी तरह गच्छ सुदृढ नींव पर रखा जा चुका था, इस प्रस्थान में धर्मघोषसूरि का योगदान स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा, इसमे कोई शंका नहीं ।

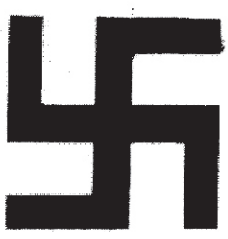
स्वस्तिक

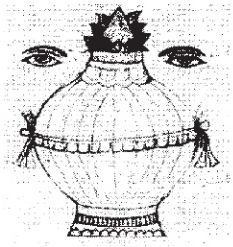
कुंभ

वर्धमानक

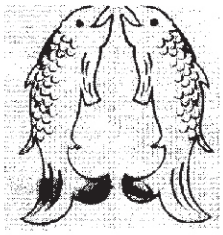
मीन युगल

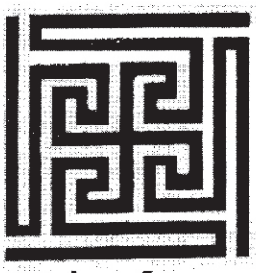
नंदावर्त

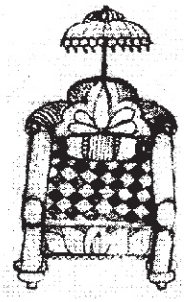
सिंहासन

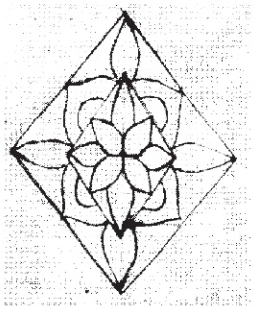
श्रीवत्स

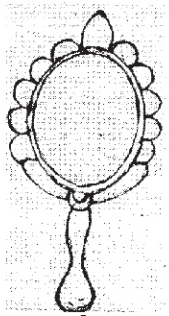
दर्पण

भाग १

मद और मानव

जन्म और मृत्यु के बीच के मिले थोडे पल यही जीवन है । प्राणीमात्र जन्म से नये-नये सपने सजाता है, पुण्य का साथ मिले तो कभी-कभी सपने पूरे होते है, सफल होते है, कभी पाप का उदय हमारे सामान्य सपनो को भी साकार होने नहीं देता । पुण्य और पाप के उदय से सफलता और निष्फलता में अटका हुआ हमारा जीवन कभी निष्फलता में हताशा अनुभव करता है, तो कभी सफलता में अभिमान से अकड जाता है, पर उसे स्वप्न में भी ख्याल नहीं होता की पुण्य द्वारा प्राप्त हुई वस्तु का अभिमान करने से, मद करने से भवांतर में वोही वस्तु दुर्लभ बन जाती है, मिल भी जाय तो हीन (तुच्छ) मिलती है ।

अपने जीवन पर नजर डालते है, हम कहीं ऐसे किसी अभिमान में, मद में पागल तो नहीं बने न ?

पुण्य के उदय से रुप मिल जाता है.....

पुण्य के उदय से ऋद्धि मिल जाती है.....

पुण्य के उदय से लब्धि मिल जाती है.....

पुण्य के उदय से ज्ञान मिल जाता है .....

सिर्फ मिल जाने से खुश नहीं हो जाना है, वस्तु को प्राप्त करने के बाद उसे पचाने की ताकत जरुरी है, यदि पचाने की ताकत नहीं हो तो अपचन हो जाता है, वस्तु हमें लाभ देने के बदले हानिकारक बन जाती है, इसीलिये तो महापुरुषो ने अद्‌भुत सिद्धांत बताये है । ज्ञान की प्राप्ति यह तो साधन है, साध्य तो एकमात्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम, ज्ञान मोहनीय कर्म का क्षय या उपशमन नहीं करे तो वह ज्ञान अज्ञान है । ऐसा ज्ञान कभी भी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकता ।

जिनेश्वर परमात्मा का जयवंता शासन हमें जागृत करने आवाज दे रहा है - मानव ! मोह की निद्रा में से जाग, मिले हुए जीवन के इन क्षणो का सदुपयोग कर ले, एक बार हाथ में से चले जायेगें तो फिर मिलना मुश्किल है ।

जयवंता जिनशासन पाकर, जाने अंजाने में जो मद में फंसे वो सामग्री पाकर भी हार गये और जब ये ही जीव मद में से बाहर निकले तव उन्हें आत्मकल्याण का मार्ग मिल गया । जीवन में हमें क्या मिला ? क्या नहीं मिला ? यह महत्व का नहीं है पर जो मिला उसके द्वारा आत्मकल्याण कितना साधा ? यह विचारणीय है ।

मद कितने, कितने प्रकार के है और इसमें फंसे जीव किस तरह बाहर निकले ओर मूल्यवान मानव भव को सफल करने कैसे आगे बढे उसकी सुंदर बात कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य महाराज ने समझायी है ।

आओ ! हम समझनेका प्रयत्न करते है -

जातिलाभकुलैश्वर्यबलरुपतपः ।

कुर्वनमंद पुनस्तानि हीनानि लाभते जनः ।।

जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रुप, तप तथा श्रुत इन आठ का मद करने से भवांतर (अगले जन्मों) में वे वस्तुये हीन मिलती है, खराब मिलती है ।

जातिमद

मैं उत्तम जाति का हूं ऐसा अभिमान रखना, गर्व करना, मद करना वो जाति मद कहलाता है ।

ऐसे प्रकार के जाति मद के कारण ही हरीकेशी मुनि चांडाल कुल में जन्मे थे ।

आज हमारे जीवन की ओर नजर डाले तो हमें ध्यान में आयेगा की हमारे पूर्वजो के बजाय, हमारे आस पास के व्यक्तियो के बजाय, हमारे स्नेही स्वजनो के बजाय हमारे जीवन में कुछ कमी है,कहीं खामी है ।

कभी हमारे से दूसरे रुप में बढ जाते है, हमें अपने रुप में कुछ कमी नजर आती है, ज्यादा खूबसूरत बनने की हम कोशिश करते है, गली-गली में नजर आते ब्यूटी पार्लर यही बात बताते है की हमारा रुप चाहिये वैसा नहीं है ।

कभी हमें अपने बल में कमी नजर आती है, हम अशक्त है, दूसरे बलवान है ऐसा लगता है, बल और ताकत पाने, प्राप्त करने यह जीव कितनी तरह की औषधियाँ खाता है, कितनी शक्तिवर्धक गोलियाँ खाता है, कितने ही टॉनिक पीता है, कहीं कसरत करने जाता है, योग करने जाता है, शीतऋतु आये तो बदामपाक, सालमपाक एवं उडदियापाक खाकर बल प्राप्त करने भटकता है ।

कहीं पर किसी को मासक्षमण करते देख खुद ऐसा करने की सोचता है, पर एक उपवास में लंबा हो जाता है, तप में कभी आगे नहीं बढ पाता ।

शास्त्राभ्यास में, गाथाये याद करने में बहुत मेहनत करने के बाद भी परिणाम शून्य आता है । इच्छा हो, प्रयत्न हो फिर भी निष्फलता मिलती है ।

ऐसी सारी बाते तो हमारी प्रतिदिन के व्यवहार में देखने, सुनने और अनुभव करने मिलती है, पर हमने इन सब के पीछे के कारण ढूंढने का कभी प्रयत्न नहीं किया, इन सब का रहस्य यहां पूण्यपाद हेमचंद्राचार्य ने प्रकट किया है । किसी भी प्रकार का अभिमान, गर्व करने से पहले सोचने जैसा है की इसका परिणाम क्या आयेगा ?

लाभ – मद

सत्ता और संपति की प्राप्ति होने पर अभिमान करना, सत्ता संपति का गर्व करना, मद करना, यह लाभ-मद कहलाता है ।

कोणिक तथा सुभूम चक्रवर्ती सत्ता-मद में आये जिसके कारण अपने प्राण गंवाकर दुर्गति को पाये ।

आज तो सत्ता का मद कदम कदम पर देखने मिलता है । कोणिक को सत्ता मद ऐसा था कि उसने मद में आकर प्रभु महावीर के परम उपासक चेडाराजा के साथ युद्ध किया जिसमें लाखो मनुष्यो की हिंसा हई । एक बार प्रभु महावीरस्वामी ने उसकी आयुष्य पूर्ण होने पर परलोक में ''छठ्ठी नारकी'' में जायेगा ऐसा कहा तब अभिमानपूर्वक उसने कहा ''मुझे छठ्ठी नारकी ही क्यों? सातवी नहीं ?

एक बार प्रभु महावीरस्वामी का भव्य सामैया निकालने वाले श्रावक कोणिक की ऐसी अधम मनोदशा का कारण लाभमद ही था ।

ऐसे मद में अनेक जीव मार्ग भूल जाते है, न बांधने जैसे कर्म बांध लेते है ।

सुभूम भी चक्रवर्ती था, छः खंड का स्वामी था ।

१४ हजार रत्न थे, सोलह हजार देव सेवा में हाजिर थे, फिर भी लाभ मद में कैसे परिणाम का भोग बना ?

सूभूम नामे आठमो चक्री, कर्मे सायर नांख्यो,

सोळ सहस यक्षे उभां दीठो, पण कीणही नवि राख्या.....

सोलह हजार देवों को एक ही समय में सागर के उपर रत्न छोडने का विचार आया और सुभूम चक्रवर्ती सागर में डूब दुर्गति के भागीदार बने....

लंकापति को भी पुण्य से मिली संपती और सत्ता का अभिमान हुआ और स्वर्ण की लंका का स्वामी नरकगति में चला गया ।क्या हमें अपने आप को ऐसी दुर्गति से अटकाना है ? क्या हमें सद्गति की ओर प्रयाण करना है ? तो ऐसे किसी भी मद का भोग नहीं बन जाये इसके लिये निरंतर जागृति, सावधानी रखने की जरुरत है ।

गर्व, अहंकार या अभिमान किसी का टिका नहीं है, इसने कभी किसी की सद्गति होने नहीं दी है । लाभ मद के जैसा ही आत्मा को दुर्गति की ओर खींच ले जाने वाला कुल-मद है ।

कुल–मद

आठ प्रकार क द में कुल-मद तीसरे स्थान पर आता है । जाति मद एवं लाभ मद का परिचय करने के बाद अब कुल मद समझते है ।

मैं ऐसा, मेरे अभिभावक ऐसे, हमारा कुल ऐसा इस प्रकार से कुल का अभिमान, गर्व या मद रखना वो कुल मद है ।

प्रभु महावीरस्वामी के जीव ने मरिची के भव में कुल का मद किया, जिससे नीच गोत्र कर्म बांधा, अनेक भव में भोगना पडा ।

देवाधिदेव आदिनाथ भगवंत को वंदना कर भरत महाराजा ने प्रश्न पूछा '' प्रभु ! आपके समवसरण में कोई भावि (भविष्य) में तीर्थंकर होनेवाली आत्मा है ?''

प्रभु आदिनाथ भगवंत ने जवाब दिया ''भरत ! यह मरीचि, जो त्रिदंडी के वेश में दिखायी दे रहा है, वो आगे जाकर उस अवसर्पिणी काल में , इसी भरत क्षेत्र में अंतिम चौबीसवे तीर्थंकर बनेंगे ।''

भरत महाराजा आनंद विभोर हो उठे, देवाधिदेव के पास से जहां मरीचि थे, वहां आये ओर भावी तीर्थंकर जानकर उल्लास भाव से वंदन करने लगे, वंदनकरते हुए कहते है '' हे मरीचि ! मैं तुम्हारे इस त्रिदंडी के वेश को वंदन नहीं कर रहा हूं, पर तुम्हारी आत्मा भरत क्षेत्र में चौबीसवा तीर्थंकर महावीर बनने वाली है, उस भावि तीर्थंकर को भावपूर्वक वंदना करता हूं ।

भरत महाराजा के जाने के बाद मरीचि नाचने लगा, मैं कौन ? मेरा कुल कितना ऊंचा ?

मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर, मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती, मैं भी भावि तीर्थंकर, वाह रे मद वाह ! तूने तीर्थंकर बनने वाली आत्मा की भी भान भूला दी । उसी क्षण मरीचि ने कुल मद करके नीच गोत्र उपार्जन किया ।

भवोभव में भटकना पडा और तीर्थंकर के भव में भी ब्राह्मण कुल में ८२ रात तक रहना पडा ।

भव महोटा कहीअे, प्रभुना सत्तावीश जो, मरीचि त्रिदंडी ते मांहे, त्रीजे भवेरे जो ।
तिहां भरत चक्रीश्वरी वंदे आवी जोई जो, कुल नो मद करी नीच गोत्र बांध्युं ते हवे रे जो....

ऐश्वर्य मद

पुण्य के उदय से प्राप्त ऐश्वर्य का गर्व करना.... मद करना.... अभिमान करना वो ऐश्वर्यमद कहलाता है ।

दशार्णभद्र राजा ने प्रभु महावीर स्वामी को वंदन करने जाते हुए यह मद किया था । प्रभु को वंदन करने निकले दशार्णभद्र राजा ने सुंदर सामैया किया । राजमहल से निकलते वक्त परमात्म भक्ति के भाव थे पर प्रभुजी के पास समवसरण के नजदीक पहूँचने पर ऐश्वर्य मद ने दशार्णभद्र राजा के मन में अपना स्थान जमाया । राजा सोचने लगे '' ऐसा सामैया तो किसीने कभी भी नहीं किया होगा, मैं कैसा ऐश्वर्यवान हूं ? मैने कितना सुंदर सामैया निकाला है ? ऐसे ऐश्वर्य मद से राजा घिर गये ।

सामने से आ रहे सौधर्म इन्द्र ने यह सामैया देखा आनंद हुआ, मन के भाद देखे, दुःख हुआ । अरे मेरा साधर्मिक ऐसा सामैया निकालकर भाव से हार जायेगा ? अभिमान में फल गंवा बैठेगा ? उसका अभिमान दूर करने, देव माया से अद्‌भुत सामैया सामने ही आकाश में से नीचे उतारा ।

इन्द्र महाराजा के सामैये के समक्ष अपना सामैया फीका लगा, पर दशार्णभद्र राजा ने तो आज इन्द्र महाराजा को भी हराने का मानो आज निश्चयही किया था, उन्होंने देशना सुन प्रभु के पास दिक्षा की याचना की, दीक्षा का स्वीकार किया, राजा से मिटकर राजर्षि बने ।

इन्द्रमहाराजा आकर चरणों में झुके, मानो कह रहे हो ''दशार्ण ! तुम जीते मै ारा । ''

धर्म आराधना करते वक्त भी आ जाते मद से अनेक आत्माये मार्ग भूली है। दशार्णभद्र भाग्यशाली थे की उन्हैं जगाने वाले इन्द्र महाराजा मिले, जिनके कारण वे आत्मकल्याण साध सके । ऐश्वर्यमद भवांतर में ऐश्वर्य का नाश करता है, इस विश्व में जो मिलता है वो मिल रहा है, वो अपने पुण्य के उदय का फल है, पुण्य है तब तक ही ऐश्वर्य भी है, पुण्य के नाश के साथ ऐश्वर्य का नाश निश्चित है तो ऐसे क्षणिक ऐश्वर्य का मद करके भवांतर के लिये अंतराय कर्म का उपार्जन नहीं करना चाहिये ।

(क्रमशः)